[2025] 4 एस.सी.आर. 1299 : 2025 आईएनएससी 200

अजय राज शेट्टी

बनाम

निदेशक और अन्य

आर 1: निदेशक

आर 2: मेसर्स इलेक्ट्रिक्स (आई) लिमिटेड

(आपराधिक अपील संख्या - 2036/2025)

17 अप्रैल 2025

[सुधांशु धूलिया* और अहसानुद्दीन अमानुल्लाह,* जे.जे.]

विचारणीय मुद्दा

क्या अपीलकर्ता को कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 की धारा 85(i)(b) के तहत दोषी ठहराना और दी गई सज़ा सही है।

हेडनोट्स †

कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 - धारा 85, 2(17) - अंशदान आदि का भुगतान न करने पर सज़ा - 'प्रिंसिपल एम्प्लॉयर' - हालांकि उत्तरदाता सं॰ 2 - कंपनी के कर्मचारियों की सैलरी से कर्मचारी राज्य बीमा अंशदान के लिए कटौती की गई थी, लेकिन उन्हें कर्मचारी राज्य बीमा निगम (ई.एस.आई.सी) में जमा नहीं किया गया - उत्तरदाता सं॰ 2 के अपीलकर्ता-जनरल मैनेजर को धारा 85(i)(b) के तहत दोषी ठहराया गया - यदि अपीलकर्ता धारा 2(17) के तहत आता है:

निर्णय: अपीलकर्ता सेक्शन 2(17) के दायरे में आता है क्योंकि वह एक 'मैनेजिंग एजेंट' है - कर्मचारियों की सैलरी से कॉन्ट्रिब्यूशन काटने के बावजूद, उसे (ई.एस.आई.सी) में जमा नहीं किया गया - हाई कोर्ट ने सही कहा कि कर्मचारी की सैलरी से काटे गए कॉन्ट्रिब्यूशन को (ई.एस.आई.सी) में जमा न करना सेक्शन 85(a) के तहत एक अपराध है और सेक्शन 85(i)(a) के तहत दंडनीय है, लेकिन ट्रायल कोर्ट ने सेक्शन 85(i)(b) के तहत कम सज़ा दी - यह बात सेक्शन 85(i)(a) से साबित होती है, जिसमें कम से कम एक साल की कैद और 10,000 रुपये के जुर्माने का प्रावधान है, क्योंकि यह रकम कर्मचारियों की सैलरी से काटी गई थी और जमा नहीं की गई, जो कि इस मामले में सच है, जबकि सेक्शन 85(i)(b) के तहत, अन्य मामलों में कैद की सज़ा कम से कम छह महीने और 5,000 रुपये का जुर्माना है - ट्रायल कोर्ट सेक्शन 85(i) के प्रावधान के तहत सेक्शन 85(i)(a) के अपराध के लिए भी कम सज़ा दे सकता था - हाई कोर्ट ने ट्रायल कोर्ट द्वारा दी गई कम सज़ा में दखल

देने की ज़रूरत महसूस नहीं की - दोषसिद्धि और सज़ा में कोई बदलाव नहीं किया गया, दिया गया जुर्माना बरकरार रखा गया। [पैरा 20, 23]

कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 – धारा 2(17) – "प्रिंसिपल एम्प्लॉयर" - व्याख्या:

निर्णय: सेक्शन 2(17) की परिभाषा में फैक्ट्री के मामले में मालिक/किरायेदार का 'मैनेजिंग एजेंट' या 'फैक्ट्री एक्ट, 1948 के तहत फैक्ट्री के मैनेजर के रूप में नामित व्यक्ति' और 'किसी अन्य प्रतिष्ठान' के लिए, 'प्रिंसिपल एम्प्लॉयर' में 'प्रतिष्ठान की देखरेख और नियंत्रण के लिए जिम्मेदार कोई भी व्यक्ति' शामिल होगा - इसलिए, किसी व्यक्ति का पदनाम मायने नहीं रखता, अगर वह व्यक्ति किसी और तरह से मालिक/किरायेदार का एजेंट है या संबंधित प्रतिष्ठान की देखरेख और नियंत्रण करता है। [पैरा 20]

उद्धृत केस लॉ

कर्मचारी राज्य बीमा निगम, चंडीगढ़ बनाम गुरदयाल सिंह **AIR 1991 SC 1741 : (1991) Supp. 1 एस.सी.सी 204;** जे के इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम चीफ इंस्पेक्टर ऑफ फैक्ट्रीज एंड बॉयलर **[1996] Supp. 6 SCR 798 : (1996) 6 एस.सी.सी 665** - से अलग।

ई.एस.आई निगम. बनाम ए के अब्दुल समद **[2016] 2 एस.सी.आर 150: (2016) 4 एस.सी.सी 785** - अनुपयुक्त माना गया।

पेंटाफोर प्रोडक्ट्स लिमिटेड बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, **2005 SCC ऑनलाइन मद 841 – का उल्लेख किया गया है।**

अधिनियमों की सूची

कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948; कारखाना अधिनियम, 1948; बीमार औद्योगिक कंपनियाँ (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1986; कर्मचारी राज्य बीमा (सामान्य) विनियम, 1950।

कीवर्ड की सूची

कर्मचारी राज्य बीमा निगम (ई.एस.आई.सी); कर्मचारी राज्य बीमा (ई.एस.आई) अंशदान के लिए कटौती; कर्मचारियों की मजदूरी से अंशदान; काटे गए अंशदान का भुगतान न करना; महाप्रबंधक; प्रधान नियोक्ता; प्रबंध एजेंट; मालिक/अधिभोगी; प्रबंधक; तकनीकी समन्वयक; कम सज़ा; बीमार उद्योग; औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (बी.आई.एफ.आर)।

अजय राज शेट्टी बनाम निदेशक और अन्य।

मामला उत्पन्न

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील संख्या 2036/2025

कर्नाटक हाई कोर्ट, बेंगलुरु के दिनांक 08.12.2023 के फैसले और आदेश, CRRP नंबर 164/2015 से।

पार्टियों में उपस्थिति

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: पी विश्वनाथ शेट्टी, वरिष्ठ अधिवक्ता, शंकर दिवाते, वैभव।

उत्तरदाता के अधिवक्ता: मनीष कुमार सरन, सुश्री अनन्या त्यागी, रोहित शर्मा, विपिन कुमार, जीतेन्द्र कुमार।

सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

निर्णय

अहसानुद्दीन अमानुल्लाह, जे.

1. अनुमति प्रदान की गई।
2. यह अपील अपीलकर्ता ने कर्नाटक हाई कोर्ट, बेंगलुरु (जिसे आगे 'हाई कोर्ट' कहा जाएगा) द्वारा दिए गए 08.12.2023 के फाइनल फैसले और आदेश (जिसे आगे 'विवादित आदेश' कहा जाएगा) के खिलाफ दायर की है, जिसके द्वारा अपीलकर्ता और उत्तरदाता सं० 2 द्वारा दायर क्रिमिनल रिवीजन पिटीशन नंबर 164/2015 को खारिज कर दिया गया है।

संक्षिप्त तथ्य:

3. मेसर्स इलेक्ट्रीक्स (आई) लिमिटेड (जिसे इसके बाद 'उत्तरदाता सं० 2' या 'कंपनी' कहा जाएगा) को बोर्ड फॉर इंडस्ट्रियल एंड फाइनेंशियल रिकंस्ट्रक्शन (जिसे इसके बाद 'बी.आई.एफ.आर' कहा जाएगा) द्वारा 31.10.2001 को केस नंबर 49/2000 में एक बीमार इंडस्ट्री घोषित किया गया था। 24.09.2002 को, बी.आई.एफ.आर ने उत्तरदाता सं० 2 के मैनेजमेंट में बदलाव का आदेश दिया। इस आदेश से दुखी होकर, उत्तरदाता सं० 2 ने अपीलीय अथॉरिटी फॉर इंडस्ट्रियल एंड फाइनेंशियल रिकंस्ट्रक्शन (जिसे इसके बाद 'ए.ए.आई.एफ.आर' कहा जाएगा) के सामने अपील नंबर 340/2002 दायर की। ऐसी अपील ए.ए.आई.एफ.आर के 15.01.2003 के आदेश द्वारा खारिज कर दी गई। इसके बाद, उत्तरदाता सं० 2 ने हाई कोर्ट में रिट याचिका नंबर 20033/2003 दायर की और

यह ध्यान देना ज़रूरी है कि कर्मचारी राज्य बीमा निगम (जिसे इसके बाद 'ई.एस.आई.सी' कहा जाएगा) भी उक्त रिट याचिका में एक पक्ष था, जिसमें हाई कोर्ट ने 03.03.2008 को सभी संबंधित पक्षों के हितों को ध्यान में रखते हुए मामले पर तेज़ी से विचार करने के लिए मामले को बी.आई.एफ.आर को वापस भेज दिया और बी.आई.एफ.आर और ए.ए.आई.एफ.आर के क्रमशः 24.09.2002 और 15.01.2003 के आदेशों को रद्द कर दिया।

4. 01.07.2010 को, बी.आई.एफ.आर ने कंपनी को अपने बकाए के निपटारे के लिए सिक्योर्ड लेनदारों के साथ बातचीत करने का निर्देश दिया। 01.02.2011 को, ई.एस.आई.सी के अधिकारियों ने उत्तरदाता सं० 2 के फैक्ट्री परिसर का दौरा किया ताकि 01.02.2010 से 31.12.2010 की अवधि के लिए कर्मचारियों के राज्य बीमा (जिसे इसके बाद 'ई.एस.आई' कहा जाएगा) योगदान के लिए की गई कटौतियों के बारे में पता लगाया जा सके और उनकी पुष्टि की जा सके। इसके बाद, एक रिपोर्ट तैयार की गई जिसमें यह खुलासा हुआ कि हालांकि ऊपर बताई गई अवधि के लिए उत्तरदाता सं० 2 के कर्मचारियों की सैलरी से 8,26,696/- रुपये (आठ लाख छब्बीस हज़ार छह सौ छियानवे रुपये) की कटौती की गई थी, लेकिन इसे ई.एस.आई.सी में जमा नहीं किया गया था। रिपोर्ट में, उत्तरदाता सं० 2 के अधिकृत हस्ताक्षरकर्ता ने अपीलकर्ता का नाम कंपनी के 'जनरल मैनेजर' और 'प्रिंसिपल एम्प्लॉयर' के रूप में बताया था। रिपोर्ट के आधार पर, उत्तरदाता सं० 1 ने कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 (जिसे इसके बाद 'अधिनियम' कहा जाएगा) की धारा 85(a)[1] के तहत अपराधों के लिए अपीलकर्ता और उत्तरदाता सं० 2

---

1. 85. **अंशदान आदि का भुगतान न करने पर सज़ा**–यदि कोई व्यक्ति–

(ए) कोई ऐसा अंशदान देने में विफल रहता है, जिसके लिए वह इस अधिनियम के तहत उत्तरदायी है, या

(बी) xxx

(सी) xxx

(डी) xxx

(ई) xxx

(च) xxx

(छ) xxx

तो उसे दंडित किया जाएगा–

(i) यदि वह खंड (ए) के तहत कोई अपराध करता है, तो उसे इतनी अवधि के कारावास से दंडित किया जाएगा जो तीन साल तक हो सकती है, लेकिन–

(ए) जो कर्मचारी के अंशदान का भुगतान न करने के मामले में एक वर्ष से कम नहीं होगी, जिसे उसने कर्मचारी की मज़दूरी से काटा है, और उस पर दस हज़ार रुपये का जुर्माना भी लगाया जाएगा;

(बी) जो किसी अन्य मामले में छह महीने से कम नहीं होगी और उस पर पाँच हज़ार रुपये का जुर्माना भी लगाया जाएगा:

बशर्ते कि न्यायालय, निर्णय में दर्ज किए जाने वाले किसी भी पर्याप्त और विशेष कारण से, कम अवधि के कारावास की सज़ा दे सकता है;

(ii) यदि वह खंड (b) से (g) (दोनों सहित) में से किसी के तहत कोई अपराध करता है, तो उसे इतनी अवधि के कारावास से दंडित किया जाएगा जो एक वर्ष तक हो सकती है या इतने जुर्माने से जो चार हज़ार रुपये तक हो सकता है, या दोनों से।

के खिलाफ स्पेशल कोर्ट फॉर इकोनॉमिक ऑफेंसेस, बैंगलोर (जिसे इसके बाद "ट्रायल कोर्ट" कहा जाएगा) में 11.10.2011 को एक प्राइवेट शिकायत दर्ज की, जिसका सं० CC No.326/2011 है।

5. ट्रायल कोर्ट ने 28.09.2013 को अपीलकर्ता को अधिनियम की धारा 85(i)(b) के तहत दोषी ठहराया और उसे छह महीने की कैद और 5000/- रुपये (पांच हजार रुपये) का जुर्माना लगाया। इससे दुखी होकर, अपीलकर्ता और उत्तरदाता सं० 2 ने प्रिंसिपल सिटी सिविल और सेशंस जज, बैंगलोर के सामने क्रिमिनल अपील नंबर 553/2013 दायर की, जिसे बाद में फास्ट ट्रैक कोर्ट VI, बैंगलोर (जिसे इसके बाद 'पहली अपीलीय अदालत' कहा जाएगा) में ट्रांसफर कर दिया गया। पहली अपीलीय अदालत ने 14.11.2014 को ट्रायल कोर्ट द्वारा दिए गए दोषसिद्धि और सज़ा के आदेश को बरकरार रखा और क्रिमिनल अपील नंबर 553/2013 को खारिज कर दिया। पहली अपीलीय अदालत के इस आदेश से दुखी होकर, अपीलकर्ता और उत्तरदाता सं० ने हाई कोर्ट में क्रिमिनल रिवीजन याचिका सं० 164/2015 दायर की।

6. हाई कोर्ट ने 08.12.2023 के विवादित आदेश से अपीलकर्ता और उत्तरदाता सं० 2 की रिवीजन याचिका को इस आधार पर खारिज कर दिया कि रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों से यह साफ साबित होता है कि अपीलकर्ता उत्तरदाता सं० 2 का जनरल मैनेजर और प्रिंसिपल एम्प्लॉयर था और यह भी साबित हुआ कि 01.02.2010 से 31.12.2010 की अवधि के दौरान उत्तरदाता सं० 2 के कर्मचारियों से 8,26,696/- रुपये (आठ लाख छब्बीस हज़ार छह सौ छियानवे रुपये) का योगदान काटा गया था, लेकिन ई.एस.आई.सी को जमा नहीं किया गया।

<u>अपीलकर्ता की दलीलें:</u>

7. अपीलकर्ता के विद्वान सीनियर वकील ने बताया कि अपीलकर्ता की नियुक्ति जुलाई, 2009 में उत्तरदाता सं० 2 में टेक्निकल कोऑर्डिनेटर के पद पर हुई थी। इस कोर्ट का ध्यान इस बात पर भी दिलाया गया कि बी.आई.एफ.आर के सामने कार्यवाही 2001 में शुरू की गई थी, जो अपीलकर्ता की नियुक्ति से बहुत पहले की बात है, और यह भी कि नियुक्ति पत्र नहीं दिया गया था क्योंकि कंपनी बीमार थी और सैलरी भी नहीं दी गई थी। यह भी तर्क दिया गया कि यह साबित करने का बोझ अभियोजन पक्ष पर है कि अपीलकर्ता को जनरल मैनेजर के रूप में नियुक्त किया गया था, जो उन्होंने केवल ई.एस.आई.सी द्वारा पेश की गई रिपोर्ट का हवाला देकर किया है। रिपोर्ट पर भी भरोसा नहीं किया जा सकता क्योंकि इसे तैयार करने वाले अधिकारी को अपीलकर्ता द्वारा क्रॉस-एग्जामिन करने के लिए कोर्ट में पेश नहीं किया गया था।

8. आगे यह भी कहा गया कि अपीलकर्ता के खिलाफ़ एक्ट की धारा 85(a) का उल्लंघन करने के लिए प्रॉसिक्यूशन द्वारा केस दर्ज करना गलत है, क्योंकि शिकायत या सबूतों में ऐसा कोई बयान नहीं है कि अपीलकर्ता ने ही कर्मचारियों की सैलरी से कॉन्ट्रिब्यूशन काटा था और उसे उत्तरदाता सं॰ 1 के पास जमा नहीं कराया था। अपीलकर्ता ने एक और बात बताई कि कर्मचारी राज्य बीमा (जनरल) रेगुलेशंस, 1950 (जिसे आगे 'रेगुलेशंस' कहा जाएगा) के रेगुलेशन 10-C[2] के तहत, प्रिंसिपल एम्प्लॉयर को ई.एस.आई.सी को फॉर्म 01(A) जमा करना होता है, लेकिन वह पेश नहीं किया गया।

9. सीनियर अधिवक्ता ने बताया कि अपीलकर्ता ने विवादित आदेश के बाद और इस कोर्ट में स्पेशल लीव टू अपील की याचिका दायर करते समय उत्तरदाता सं॰ 1 को पूरा बकाया चुका दिया था, इसलिए उन्होंने उसे बरी करने की प्रार्थना की।

10. उनके पद के संबंध में, यह बताया जाता है कि इस कोर्ट में दायर उत्तरदाता सं॰ 2 के काउंटर एफिडेविट के पैराग्राफ 5 में साफ तौर पर कहा गया है कि अपीलकर्ता कंपनी में सिर्फ 'टेक्निकल कोऑर्डिनेटर' के तौर पर काम कर रहा था और उस समय श्री अजीत हेगड़े, उत्तरदाता सं॰ 2 के प्रिंसिपल एम्प्लॉयर थे।

11. अपीलकर्ता ने एक और तर्क दिया कि अधिनियम के तहत ज़िम्मेदारी तय करते समय आरोपी के अपराध को ध्यान में रखा जाना चाहिए। यह कहा गया कि यह अधिनियम असल में एक सिविल गलती को आपराधिक बनाता है। यह रेगुलेशन के रेगुलेशन 31C[3]

---

2. 10-C. फैक्ट्री/एस्टैब्लिशमेंट के रजिस्ट्रेशन के समय दी गई जानकारी में बदलाव के बारे में सूचना।—जिस फैक्ट्री/एस्टैब्लिशमेंट पर यह एक्ट लागू होता है और जिसे पहले ही कोड नंबर अलॉट किया जा चुका है, उसका मालिक, फैक्ट्री/एस्टैब्लिशमेंट के रजिस्ट्रेशन के समय फॉर्म 01 में दी गई जानकारी में किसी भी बदलाव के बारे में, ऐसे बदलाव के दो हफ़्ते के अंदर, संबंधित रीजनल ऑफिस, सब-रीजनल ऑफिस, डिविजनल ऑफिस या ब्रांच ऑफिस को सूचित करेगा।

3. 31-C. योगदान या किसी अन्य बकाया राशि पर हर्जाना, जिसका भुगतान समय पर नहीं किया गया हो।—यदि कोई नियोक्ता रेगुलेशन 31 के तहत तय समय सीमा के भीतर योगदान, या अधिनियम के तहत देय कोई अन्य राशि का भुगतान करने में विफल रहता है, तो कॉर्पोरेशन नीचे बताई गई दरों से अधिक नहीं, हर्जाना जुर्माने के तौर पर वसूल कर सकता है:—

देरी की अवधि	देय राशि पर प्रति वर्ष प्रतिशत में अधिकतम क्षतिपूर्ति दर
(i) 2 महीने से कम	5%
(ii) 2 महीने और उससे अधिक लेकिन 4 महीने से कम	10%
(iii) 4 महीने और उससे अधिक लेकिन 6 महीने से कम	15%
(iv) 6 महीने और उससे अधिक	25%

बशर्ते कि कॉर्पोरेशन किसी ऐसी कंपनी के संबंध में जिसके लिए नेशनल कंपनी लॉ ट्रिब्यूनल ने इंसॉल्वेंसी एंड बैंकरप्सी कोड, 2016 के तहत एक रिज़ॉल्यूशन प्लान मंज़ूर किया है,

कर सकता है

को देखने से साफ पता चलता है, जिसमें यह बताया गया है कि ई.एस.आई.सी के पास डिफॉल्ट करने वाले एम्प्लॉयर से बकाया कॉन्ट्रिब्यूशन को पेनल्टी के तौर पर वसूलने की पावर है और यह ई.एस.आई.सी के विवेक पर है कि वह ऐसे नुकसान को माफ कर दे या उसे 50% तक कम कर दे। यह इस बात पर निर्भर करता है कि कंपनी को 'बीमार कंपनी' घोषित किया गया हो, जो इस मामले में उत्तरदाता सं० 2 थी। इसलिए, ई.एस.आई.सी को क्रिमिनल केस चलाने पर जोर देने के बजाय ज़्यादा उदार रवैया अपनाना चाहिए था।

12. सीनियर अधिवक्ता ने अपनी दलील को खत्म करते हुए कहा कि, अगर अपीलकर्ता को दोषी ठहराया भी जाता है, तो उसे कोर्ट की कार्यवाही खत्म होने तक सिर्फ़ एक दिन के लिए सज़ा दी जा सकती है। उन्होंने **ई.एस.आई. कॉर्पोरेशन बनाम ए के अब्दुल समद, (2016) 4 SCC 785** मामले में इस कोर्ट के फैसले का हवाला दिया।

<u>उत्तरदाता सं० 1 द्वारा प्रस्तुतियाँ:</u>

13. उत्तरदाता सं० 1 के वकील ने कहा कि अपीलकर्ता के पास यह दिखाने के लिए दस्तावेज़ पेश करने का मौका था कि वह सिर्फ़ एक 'टेक्निकल कोऑर्डिनेटर' था। इसके अलावा, हाई कोर्ट ने यह भी कहा कि अपीलकर्ता के पास अपना स्टेटस दिखाने के लिए वेज-स्लिप या पे-स्लिप पेश करने का भी मौका था, और उसने ऐसा नहीं किया। अपीलकर्ता ने उत्तरदाता सं० 2 से कोई भी ज़रूरी दस्तावेज़ मंगवाने की भी कोई कोशिश नहीं की।

14. ई.एस.आई.सी के वकील ने कोर्ट का ध्यान मद्रास हाई कोर्ट के **पेंटाफोर प्रोडक्ट्स लिमिटेड बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, 2005 एस.सी.सी ऑनलाइन मद 841** मामले में दिए गए फैसले की ओर भी दिलाया, जिसमें मुद्दा नेगोशिएबल इंस्ट्रूमेंट्स अधिनियम,

---

(ए) मामले की खूबियों के आधार पर लगाए गए या लगाए जाने वाले हर्जाने का 50 प्रतिशत तक माफ कर दिया जाएगा।

(बी)असाधारण कठिन मामलों में, लगाए गए या लगाए जाने वाले हर्जाने को पूरी तरह या आंशिक रूप से माफ कर दिया जाएगा।

ऊपर दिया गया प्रोविज़ो, इसे बदले जाने से पहले [नोटिफिकेशन नंबर N 12/13/1/2016-P&D तारीख 17-10-2018] के अनुसार, इस तरह था:

बशर्ते कि कॉर्पोरेशन, किसी फैक्ट्री या एस्टैब्लिशमेंट के संबंध में जिसे बीमार इंडस्ट्रियल कंपनी घोषित किया गया है और जिसके संबंध में बोर्ड फॉर इंडस्ट्रियल एंड फाइनेंशियल रिकंस्ट्रक्शन द्वारा एक रिहैबिलिटेशन स्कीम मंज़ूर की गई है, ये कर सकता है:

(a) मैनेजमेंट में बदलाव होने पर, जिसमें यूनिट्स का वर्कर्स कोऑपरेटिव को ट्रांसफर शामिल है, या किसी बीमार इंडस्ट्रियल कंपनी का किसी हेल्दी कंपनी के साथ मर्जर या अमैल्गमेशन होने पर, लगाए गए या लगाए जाने वाले डैमेजेस को पूरी तरह माफ कर दिया जाए;

(b) दूसरे मामलों में, मामले की खूबियों के आधार पर, लगाए गए या लगाए जाने वाले हर्जाने का 60 प्रतिशत तक माफ कर सकता है;

(c) असाधारण कठिन मामलों में, लगाए गए या लगाए जाने वाले हर्जाने को पूरी तरह या आंशिक रूप से माफ़ कर देना।'

1881 की धारा 138 की एप्लीकेबिलिटी से संबंधित था, जिसके मुकाबले सिक इंडस्ट्रियल कंपनीज़ (स्पेशल प्रोविज़न्स) एक्ट, 1986 की धारा 22(1)[4] और 22A[5] थीं। मद्रास हाई कोर्ट ने फैसला सुनाया कि सिक इंडस्ट्रियल कंपनीज़ (स्पेशल प्रोविज़न्स) एक्ट, 1986 के तहत किसी कंपनी को बीमार घोषित करने वाला आदेश, उस कंपनी के खिलाफ धारा 22(1) या 22A के तहत आपराधिक कार्यवाही को नहीं रोकता है।

15. वकील साहब ने कहा कि हाई कोर्ट ने पाया कि अपीलकर्ता के खिलाफ पर्याप्त सबूत होने के बावजूद, उसे अधिनियम की धारा 85(i)(b) के तहत दोषी ठहराया गया, न कि अधिनियम की धारा 85(i)(a) के तहत, जिससे उसे कम सज़ा मिली। इसी बात को ध्यान में रखते हुए, उन्होंने अपील खारिज करने की मांग की।

<u>उत्तरदाता सं० 2 द्वारा प्रस्तुतियाँ:</u>

16. उत्तरदाता सं० 2 के वकील ने बताया कि अपीलकर्ता ने इंजीनियरिंग कोर्स पूरा करने के बाद, बिना किसी इंडस्ट्रियल अनुभव के जुलाई, 2009 में कंपनी में 'टेक्निकल कोऑर्डिनेटर' के तौर पर जॉइन किया। उसने जुलाई, 2009 से अप्रैल, 2011 तक कंपनी में काम किया। वह सिर्फ़ एक टेक्निकल कोऑर्डिनेटर था और उसने कभी भी प्रिंसिपल एम्प्लॉयर या जनरल मैनेजर के तौर पर काम नहीं किया।

17. वकील ने यह भी बताया कि कंपनी के प्रमोटरों में से एक प्रिंसिपल एम्प्लॉयर हैं, जिनका नाम श्री अजीत हेगड़े है। यह भी बताया गया कि अपीलकर्ता ने 22.12.2023 को ई.एस.आई.सी के बकाया 6,86,696/- रुपये (छह लाख छियासी हज़ार छह सौ

---

4. 22. कानूनी कार्यवाही, कॉन्ट्रैक्ट वगैरह का निलंबन–(1) जहाँ किसी इंडस्ट्रियल कंपनी के संबंध में, सेक्शन 16 के तहत कोई जाँच पेंडिंग है या सेक्शन 17 के तहत बताई गई कोई योजना तैयार की जा रही है या उस पर विचार किया जा रहा है या कोई स्वीकृत योजना लागू की जा रही है या जहाँ किसी इंडस्ट्रियल कंपनी से संबंधित सेक्शन 25 के तहत कोई अपील पेंडिंग है, तो, कंपनी अधिनियम, 1956 (1 of 1956), या किसी अन्य कानून या इंडस्ट्रियल कंपनी के मेमोरेंडम और आर्टिकल्स ऑफ़ एसोसिएशन या उक्त अधिनियम या अन्य कानून के तहत प्रभावी किसी अन्य दस्तावेज़ में निहित किसी भी बात के बावजूद, इंडस्ट्रियल कंपनी को बंद करने या इंडस्ट्रियल कंपनी की किसी भी संपत्ति के खिलाफ़ निष्पादन, कुर्की या इसी तरह की कोई कार्यवाही या उसके संबंध में रिसीवर की नियुक्ति के लिए कोई कार्यवाही और इंडस्ट्रियल कंपनी के खिलाफ़ पैसे की वसूली के लिए या किसी सुरक्षा को लागू करने के लिए या इंडस्ट्रियल कंपनी को दिए गए किसी भी लोन या एडवांस के संबंध में किसी गारंटी को लागू करने के लिए कोई मुकदमा, बोर्ड की सहमति के बिना या, जैसा भी मामला हो, अपीलीय प्राधिकरण की सहमति के बिना दायर नहीं किया जाएगा या आगे नहीं बढ़ाया जाएगा।

5. '22-A. संपत्ति का निपटान न करने का निर्देश–यदि बोर्ड की राय है कि बीमार औद्योगिक कंपनी या लेनदारों या शेयरधारकों के हित में या सार्वजनिक हित में कोई निर्देश आवश्यक है, तो वह लिखित आदेश द्वारा बीमार औद्योगिक कंपनी को, बोर्ड की सहमति के बिना, अपनी किसी भी संपत्ति का निपटान न करने का निर्देश दे सकता है–

(ए) धारा 18 के तहत योजना की तैयारी या विचार-विमर्श की अवधि के दौरान; और

(बी) धारा 20 की उप-धारा (1) के तहत कंपनी को बंद करने के लिए बोर्ड द्वारा राय दर्ज करने से लेकर संबंधित उच्च न्यायालय के समक्ष समापन से संबंधित कार्यवाही शुरू होने तक की अवधि के दौरान।'

छियानवे रुपये) का बैलेंस अमाउंट क्लियर कर दिया था, हालांकि वह उत्तरदाता सं० 2 के प्रिंसिपल एम्प्लॉयर या जनरल मैनेजर नहीं थे और वकील ने बताया कि केंद्र सरकार द्वारा बी.आई.एफ.आर को भंग करने के बाद (2016 में), कंपनी ने प्रोविडेंट फंड अकाउंट का बकाया चुका दिया और अपने सभी कर्मचारियों के साथ एक बार में पूरा और अंतिम सेटलमेंट कर लिया।

<u>विश्लेषण, तर्क और निष्कर्ष:</u>

18. अपीलकर्ता का मुख्य तर्क यह है कि वह न तो जनरल मैनेजर के पद पर था और न ही संबंधित अवधि के दौरान वह 'प्रिंसिपल एम्प्लॉयर' था। यह दलील दी गई कि ई.एस.आई.सी को पेमेंट करने की ज़िम्मेदारी कंपनी की थी, इसलिए उस पर एक्ट के तहत किसी अपराध का आरोप नहीं लगाया जा सकता, और न ही उसे दोषी ठहराया जा सकता है।

19. ट्रायल कोर्ट, पहली अपीलीय कोर्ट और साथ ही हाई कोर्ट ने भी तथ्यों के बारे में एक जैसे निष्कर्ष दिए हैं कि अपीलकर्ता ज़िम्मेदार था, क्योंकि उत्तरदाता सं० 2/कंपनी के रिकॉर्ड में उसे जनरल मैनेजर बताया गया था, जिसका वह खंडन नहीं कर सका। इसके अलावा, यह भी पाया गया है कि अधिकारियों/कोर्ट के सामने लिए गए रुख के अलावा, अपीलकर्ता यह दिखाने में सक्षम नहीं था कि वह ऐसे पद पर नहीं था या उसे अपने नियुक्ति पत्र, वेतन पर्ची आदि के आधार पर जनरल मैनेजर के रूप में नामित नहीं किया गया था। इसके अलावा, अपीलकर्ता, जिसने यह स्वीकार किया है कि वह उत्तरदाता सं० 2/कंपनी के रोज़गार में था, ने यह खुलासा नहीं किया है कि संबंधित अवधि के दौरान ऐसे पदों पर कौन व्यक्ति थे, जिसके बारे में वह अनजान नहीं हो सकता था। अधिनियम की धारा 2(17), जो 'प्रधान नियोक्ता' को परिभाषित करती है, इस प्रकार है:

> **(17) "प्रिंसिपल एम्प्लॉयर" से तात्पर्य है** -
>
> **(i)** किसी फ़ैक्टरी में, फ़ैक्टरी का मालिक या दखलकार करने वाला और इसमें ऐसे मालिक या दखलकार करने वाले का मैनेजिंग एजेंट, मृत मालिक या दखलकार करने वाले का कानूनी प्रतिनिधि, और जहाँ किसी व्यक्ति को फ़ैक्टरी अधिनियम, 1948 (1948 का 63) के तहत फ़ैक्टरी का मैनेजर नामित किया गया है, तो वह नामित व्यक्ति;
>
> **(ii)** भारत में किसी भी सरकार के किसी भी विभाग के कंट्रोल वाले किसी भी एस्टैब्लिशमेंट में, उस सरकार द्वारा इस काम के लिए नियुक्त अथॉरिटी या जहाँ कोई अथॉरिटी नियुक्त नहीं की गई है, वहाँ विभाग का प्रमुख;

(iii) भारत में किसी भी सरकार के किसी भी विभाग के नियंत्रण वाले किसी भी स्थिरता में, उस सरकार द्वारा इस काम के लिए नियुक्त अधिकारी या जहाँ कोई अधिकारी नियुक्त नहीं की गई है, उस विभाग का प्रमुख;

20. ऊपर बताई गई बातों से यह साफ़ है कि परिभाषा में फ़ैक्ट्री के मामले में मालिक/किरायेदार का 'मैनेजिंग एजेंट' या 'फ़ैक्ट्री एक्ट, 1948' (जिसे इसके बाद "फ़ैक्ट्री अधिनियम" कहा जाएगा) के तहत फ़ैक्ट्री के मैनेजर के तौर पर नामित व्यक्ति और 'किसी अन्य प्रतिष्ठान' के लिए, 'मुख्य नियोक्ता' में 'कोई भी व्यक्ति शामिल होगा जो प्रतिष्ठान की देखरेख और नियंत्रण के लिए ज़िम्मेदार है'। इसलिए, किसी व्यक्ति का पदनाम मायने नहीं रखता अगर वह व्यक्ति किसी और तरह से मालिक/किरायेदार का एजेंट है या संबंधित प्रतिष्ठान की देखरेख और नियंत्रण करता है। रिकॉर्ड में मौजूद सबूतों से, हम पाते हैं कि अपीलकर्ता एक्ट की धारा 2(17) के दायरे में आता है, क्योंकि वह एक 'मैनेजिंग एजेंट' है।

21. हाई कोर्ट के सामने, अपीलकर्ता ने दो फैसलों पर भरोसा किया, जैसे कि **कर्मचारी राज्य बीमा निगम, चंडीगढ़ बनाम गुरदयाल सिंह, AIR 1991 SC 1741** और **जे के इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड बनाम चीफ इंस्पेक्टर ऑफ़ फैक्ट्रीज़ एंड बॉयलर, (1996) 6 SCC 665**। हमारी राय में, ये साफ़ तौर पर अलग हैं। **गुरदयाल सिंह** (उपरोक्त) मामले में, यह माना गया था कि जब किसी फैक्ट्री में कोई ऑक्यूपायर होता है, जो एक्ट की धारा 2(17)(i) के तहत आता है, तो संबंधित कंपनी के डायरेक्टर्स को एक्ट की धारा 2(17)(iii) का सहारा लेकर शामिल नहीं किया जा सकता, जो एक अवशिष्ट खंड जैसा था। यह तय किया गया था कि तथ्यात्मक सबूत और वास्तविक स्थिति के अभाव में, डायरेक्टर्स को अपने आप मालिक नहीं माना जा सकता। यह मानते हुए कि हाई कोर्ट ने कंपनी पर ज़िम्मेदारी तय करने में सही किया था, 'ऑक्यूपायर' होने की स्थिति में, ऑक्यूपायर मांग को पूरा करने के लिए ज़िम्मेदार था, भले ही किसी अन्य व्यक्ति को 'मैनेजर' के रूप में नामित किया गया हो। हमारे विचार से, **जे के इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड** (उपरोक्त) एक अलग क्षेत्र में काम करता है, यानी फैक्ट्रीज़ एक्ट के तहत ज़िम्मेदारी के संदर्भ में और फैक्ट्रीज़ एक्ट के तहत किस पर ज़िम्मेदारी आती है, इसकी व्याख्या को एक्ट के तहत ज़िम्मेदारी पर भी सीधे तौर पर लागू नहीं किया जा सकता, क्योंकि एक्ट में इस संबंध में विशिष्ट प्रावधान हैं। आखिरकार, कोर्ट ने निष्कर्ष निकाला:

> '**62.** संक्षेप में हमारे निष्कर्ष ये हैं:
>
> **(i)** किसी कंपनी के मामले में, जिसके पास कोई फैक्ट्री है, कंपनी के डायरेक्टर में से ही किसी एक को इस अधिनियम के मकसद से फैक्ट्री का ऑक्यूपायर नोटिफाई

किया जा सकता है और कंपनी किसी दूसरे कर्मचारी को फैक्ट्री का ऑक्यूपायर नॉमिनेट नहीं कर सकती;

(ii) अगर कंपनी अपने किसी डायरेक्टर को फैक्ट्री का ऑक्यूपायर नॉमिनेट करने में फेल हो जाती है, तो फैक्ट्री इंस्पेक्टर कंपनी के किसी भी डायरेक्टर के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए आज़ाद होगा, उसे फैक्ट्री का माना हुआ ऑक्यूपायर मानकर, ताकि अधिनियम के प्रोविज़न के किसी भी उल्लंघन या अधिनियम के तहत किए गए अपराधों के मामले में उस पर मुकदमा चलाया जा सके और उसे सज़ा दी जा सके।

(जोर दिया गया)

22. इसलिए, **जे के इंडस्ट्रीज लिमिटेड** (उपरोक्त) ने केवल फैक्ट्रीज़ अधिनियम से संबंधित मामलों को देखा और मौजूदा संदर्भ में अपीलकर्ता की मदद नहीं करता है।

23. इसके अलावा, हाई कोर्ट ने सही कहा कि किसी कर्मचारी की सैलरी से काटे गए कॉन्ट्रिब्यूशन को ई.एस.आई.सी में जमा न करना एक्ट की धारा 85(a) के तहत एक अपराध है और अधिनियम की धारा 85(i)(a) के तहत दंडनीय है, लेकिन ट्रायल कोर्ट ने अधिनियम की धारा 85(i)(b) के तहत कम सज़ा दी थी। यह बात एक्ट की धारा 85(i)(a) से साफ पता चलती है, जिसमें कम से कम एक साल की कैद और 10,000/- रुपये (दस हज़ार रुपये) के जुर्माने का प्रावधान है, क्योंकि यह रकम कर्मचारियों की सैलरी से काटी गई थी और जमा नहीं की गई थी, जो कि इस मामले में सच है, जबकि अधिनियम की धारा 85(i)(b) के तहत, अन्य मामलों में कैद की सज़ा कम से कम छह महीने और 5,000/- रुपये (पांच हज़ार रुपये) के जुर्माने के साथ है। बेशक, ट्रायल कोर्ट अधिनियम की धारा 85(i) के प्रोविज़ो के तहत अधिनियम की धारा 85(i)(a) के तहत अपराध के लिए भी कम सज़ा दे सकता था। कुल मिलाकर, हाई कोर्ट को ट्रायल कोर्ट द्वारा दी गई कम सज़ा में दखल देने की ज़रूरत महसूस नहीं हुई। इस तरह, हम पाते हैं कि दोषसिद्धि और सज़ा में किसी दखल की ज़रूरत नहीं है, खासकर इस मामले में, जहां कर्मचारियों की सैलरी से कॉन्ट्रिब्यूशन काटे जाने के बावजूद, उन्हें ई.एस.आई.सी में जमा नहीं किया गया था।

24. **ए के अब्दुल समद** (उपरोक्त) मामले में, कोर्ट के सामने सवाल यह था कि क्या सज़ा कम करने का अधिकार सिर्फ़ छह महीने से कम की जेल की सज़ा के लिए दिया गया था या इसमें कोई जुर्माना न लगाने या पाँच हज़ार रुपये से कम का जुर्माना लगाने का अधिकार भी शामिल था। इस सवाल का जवाब देते हुए, कोर्ट ने कहा:

'9. हमारी राय में, पीनल कोड के संदर्भ में "जुर्माना भी लगाया जा सकता है" वाला क्लॉज़ डायरेक्टरी माना जा सकता है और इस तरह, कोर्ट को जेल की सज़ा के अलावा जुर्माना लगाने का भी अधिकार देता है, हालांकि इस कोर्ट ने ज़ुंजारराव भीकाजी नागरकर [ज़ुंजारराव भीकाजी नागरकर बनाम यूनियन ऑफ़ इंडिया, (1999) 7 एससीसी 409: 1999 एससीसी (एल&एस) 1299] मामले में जो राय दी थी, उसके अनुसार यह अधिकार कुछ हद तक सीमित हो जाता है। लेकिन यह साफ़ है कि आई.पी.सी के तहत अपराधों के लिए कोई न्यूनतम जुर्माना तय नहीं है और न ही यह अधिनियम आर्थिक अपराधों को रोकने के खास मकसद से बनाया गया था, जैसा कि चेर्न ताओंग शांग [चेर्न ताओंग शांग बनाम कमांडर एस.डी. बैजल, (1988) 1 एससीसी 507: 1988 एससीसी (क्रि.) 162] मामले में था। एम्प्लॉइज़ स्टेट इंश्योरेंस एक्ट, 1948 के तहत अपराध और सज़ा बनाने का मकसद साफ़ तौर पर अधिनियम के उन प्रावधानों के उल्लंघन के खिलाफ़ रोक लगाना है जो कर्मचारियों के लिए फ़ायदेमंद हैं। <u>योगदान का भुगतान न करना एक आर्थिक अपराध है और इसलिए विधायिका ने न केवल न्यूनतम कारावास की अवधि तय की है, बल्कि अधिनियम की धारा 85(a)(i)(b) के तहत पांच हजार रुपये का निश्चित जुर्माना भी तय किया है। मुख्य प्रावधान के तहत, तय फीस से कम देने का कोई विवेक नहीं है। यह केवल प्रोविज़ो है जो एक अपवाद की तरह है, जिसके तहत अदालत को कम अवधि के लिए कारावास देने का सीमित विवेक दिया गया है। खास बात यह है कि प्रोविज़ो में पांच हजार रुपये से कम जुर्माना लगाने के लिए कोई शब्द नहीं मिलते हैं। ऐसी स्थिति में विधायिका का इरादा साफ है और इसमें किसी व्याख्या की गुंजाइश नहीं है। कानून यह अच्छी तरह से तय है कि जब कानून के शब्द साफ होते हैं, तो किसी व्याख्या की आवश्यकता नहीं होती है, जब तक कि प्रावधानों को असंवैधानिकता या बेतुकेपन से बचाने की आवश्यकता न हो। इन दोनों में से कोई भी स्थिति यहाँ लागू नहीं होती है।</u>

10. इसलिए, सवाल का जवाब अपील करने वाले के पक्ष में दिया जाता है <u>और यह माना जाता है कि जुर्माने की रकम पांच हज़ार रुपये होगी और अपराध साबित होने के बाद कोर्ट के पास इसे कम करने का कोई अधिकार नहीं है।</u>

प्रोविज़ो के अनुसार अधिकार सिर्फ़ जेल की सज़ा की अवधि के संबंध में ही सीमित है।'

25. इस तरह, **ए के अब्दुल समद** (उपरोक्त) मामले में दिया गया फैसला अपीलकर्ता के लिए किसी काम का नहीं है। जबकि निचली अदालतों द्वारा लगाए गए और पुष्टि किए गए जुर्माने को बरकरार रखा गया है, हम इस बात से सहमत नहीं हैं कि जेल की सज़ा को सिर्फ़ एक दिन के लिए, यानी कोर्ट के उठने तक, लागू किया जाए।

26. इसलिए, अपील में कोई दम न होने के कारण उसे खारिज किया जाता है। अपीलकर्ता को पहले से जेल में बिताई गई अवधि को घटाकर, अगर कोई हो, तो सज़ा काटने और अगर जुर्माना पहले ही नहीं भरा गया है, तो ट्रायल कोर्ट द्वारा तय किया गया जुर्माना भरने का निर्देश दिया जाता है। 18.03.2024 के आदेश द्वारा सरेंडर करने से दी गई छूट वापस ले ली गई है। अपीलकर्ता आज से दो हफ़्ते के अंदर ट्रायल कोर्ट के सामने सरेंडर करेगा।

27. रजिस्ट्री को इस आदेश की एक कॉपी ट्रायल कोर्ट को भेजने का निर्देश दिया जाता है।

28. खर्चे के संबंध में कोई ऑर्डर नहीं दिया जा रहा है

29. अंतर्वर्ती आवेदन सं० 20317/2024 को मंज़ूरी दी जाती है।

30. अंतर्वर्ती आवेदन सं० 20329/2024 का निपटारा कर दिया गया है।

मामले का परिणाम: अपील खारिज।

यह अनुवाद सुश्री लीना मुखर्जी, पैनल अनुवादक के द्वारा किया गया।